भारतीय इतिहास, पुराणादि की गाथाओं में व्याप्त सकारणता

Dr. Prem Sukh Mangla

Key words: लोकगाथा, पौराणिकगाथा, औपनिषदिकगाथा, प्रतीक, उपयोगिता।

वेद, पुराण और उपनिषदादि में सदियों से हमारी सभ्यता का विकासक्रम सम्यक् रूप से संकलित है। कालांतर में इनमें गुम्फित बहुत सी बातें लोकगाथा, पौराणिकगाथा और औपनिषदिकगाथाओं के रूपमें तथा मिथकों के रूप में मानी जाने लगी। हमारा लक्ष्य है, उन कथाओं, गाथाओं से दार्शनिक, धार्मिक और व्यहारिक सारतत्त्वों को ढूँढ़ना। हमारे साहित्यों में ऐसी कितनी ही कथाएँ हैं जों भारतीयसंस्कृतियों, भारतीयदर्शनों, भारतीयधर्मों के सिद्धांतों को निरूपित करती हैं। गाथा-कथाओं के व्याजसे जनमानस में उन लाभकारी आचरणों के प्रति लगाव उत्पन्न करना और उन्हें अधिक प्रभावशाली व्यवहारिक रूप देकर अभिरुचि पैदा करना रहा है। यह मांगलीक ढ़ंग साद्येश्य रहा और अधिक प्रभावोत्पादक भी सिद्ध हुआ। उदाहरणस्वरूप इन सहस्रों गाथाओं में से कुछ ही यहाँ उद्धृत की जा रही हैं। भारत के बहुत से भागों में रामचरितमानस हृदयपटल के परिवर्तन में उच्चस्तरीय रही है, अतः कुछ प्रसंग वहाँ जो केवल संदर्भों के रूपमें दिए गए हैं उन्हें विभिन्न इतिहासों, पुराणों एवं महाभारत में प्रसंग की उपयोगिता संवर्धन के लिए पूर्ण रूपसे उपकथा का रूप में दिया गया है। लक्षवधि कथाएँ ऐसी हैं कि उदयोगिता, व्यवहार, आचार के प्रसंग और मुख्य कथा की सहायिका के रूपमें उपस्थित की गई हैं। कथाप्रवाह के सहयोग हेतु इन अवान्तर उपकथाओं का मौलिकमहत्व नहीं है, ऐसा नहीं है। और ऐसा भी नहीं है कि सभी दन्तकथा मात्र हों, बहुत ऐसी भी जो ऐतिहासिक होते हुए उपकथाओं के रूपमें ही वर्णित पाई जाती हैं। श्रुतिमत की सहायिका भी हैं।

1-'श्रवणं कुर्यात' की महत्ता- श्रुतियों के दार्शनिकपक्ष की पुष्टि के लिए अन्तरंग साधनों में एक है श्रवणं कुर्यात् भावार्थ है श्रवणकी महत्ता। इसी प्रसंग को मानसके पात्र हनुमान में चरितार्थ पाते हैं। हनुमानमें शिवशक्ति एवं पवनशक्ति दो का प्रादुर्भाव है, क्यों है ऐसा? क्योंकि प्रथमतः पवनपत्नि अंजनीके गर्भ से इनका जन्म हुआ। और

जन्मका कारण थी शिवशक्ति थी। कथा का अवतरण इसप्रकार है कि भगवान शंकर की वीर्यशक्ति दैववशात् कानों के जरिये माता अंजनीके गर्भमें पहुँच गई, उसीसे हनुमानका जन्म हुआ। तात्पर्य है कि अंजनी का समागम न शंकरसे हुआ और न पवनसे। कानोंके माध्यमसे शिवशक्ति संचरित हुई। अतः हनुमानको रामचरितमानसमें तीन नामोसे व्याख्यायित किया है- अंजनीपुत्र, पवनपुत्र- 'पवनतनय बल पवन समाना' तथा शंकरसुवन- 'शंकरसुवन केसरी नंदन' आदि से । एक ओर हनुमान 'पवनसुत' है दूसरी ओर 'शंकरसुत' है। रामचरितमानसमकी पँक्ति- 'पवनतनय बल पवन समाना' तथा हनुमानचालीसा की पँक्ति- 'शंकरसुअन केसरी नन्दन। तेजप्रताप महा जग बंदन', ये क्रीन हनुमानके अपरिमितबल को जन्मके मूलकारण शब्दबलाघातजन्य 'शक्ति' के साथ जोड़ती हैं। अर्थात शक्ति कर्णद्वारों से संप्रविष्ट होना सम्भव है। यहाँ 'का चुप साध रहेहु हनुमाना। पवच तनय बल पवन समाना' स्वरूपविज्ञान की श्रवणेन्द्रियसे अनुमिति करता है। 'सुनतेहि भयउं पर्वताकारा' अर्थात् श्रवणेन्द्रियके माध्यमसे हनुमानका जन्म हुआ, साध्यशक्ति और साधनशक्ति की कार्यकारणता की ओर इंगित करता है, श्रुतियों का 'श्रवणं कुर्यात्' आत्मिकबल का संवर्धन करना इस आख्यान से चरितार्थ है।

2- आसुरीवृत्तियों का विनाश सशक्त-प्रज्ञावान पुरुषों से ही सम्भव है- यह देखते हैं पुराणोंके दैवासुर संग्राम में। इससे ज्ञात होता है कि मनोगत दो वृत्तियाँ निरंतर क्रियाशील रहती हैं आसुरी एवं दैवी। पौराणिक दैवासुर संग्राम आसुरीवृत्त का हनन दैवीवृत्तिसे करने में तात्पर्य है। अन्य शब्दों में प्रारब्ध पर पुरुषार्थ की विजय का सूचक भी है।

3- 'धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात् धर्मारूढ़ अभयको प्राप्त करता है- धर्मारूढ़ अम्बरीषकी कथा में आता है कि उसके राज्यमें सभी अनिवार्यतः एकादशी को अन्नाहार नहीं करते थे पूर्ण उपवास रखते थे। द्वादशी के दिन पारणा करना भी उतना ही आवश्यक माना जाता था जितना कि एकादशी का उपवास। धर्म के समुचित पालन करने पर विपत्तिकाल में धर्म सहायक होता है। कथा इसप्रकार है कि द्वादशीके दिन दुर्वासा ऋषि का एकबार आगमन हुआ और अम्बरीषमहाराज ने उन्हें आतिथ्य हेतु भोजनका निमंत्रण दिया जिसे उन्होंने स्वीकार किया। उससे पहले स्नानादि से निवृत्त होने की कहकर देरी तक महऋषि दुर्वासा नहीं आए। महाराज अम्बरीषको चिन्ता हुई कि दिवस का अन्त होने जारहा है द्वादशीकी पारणा आवश्यक है बिना पारणाके दिवस समाप्त होने पर दोष है ओर आतिथ्यधर्म के

अनुसार अतिथिसे पूर्व पारणा करना भी दोष है, परन्तु अन्य कोई उपाय नादेख अन्ततः महाराजने मात्र कुछ जलपान कर पारणा करली। उसी समय महर्षि दुर्वासा लौट आए। राजाको पारणायुक्त देख क्रोधमें भरकर कि आतिथ्य से पूर्व तुमने कैसे पारणा कर ली, ऋषि ने राजाको मारने के लिए कृत्या भेजी। परन्तु सुदर्शनचक्र ने आकर ना केवल राजाकी रक्षा की अपितु दुर्वासा की तरफ ही मारने दौड़ा। अन्त में कहीं भी प्राणरक्षा न पाकर राजासे ही त्राण मिला। अतः 'धर्मो रक्षति रक्षितः' पुराणों की उक्ति सुरक्षा-प्रदान हेतु है।

4- आप्तवचनों से फलोप्लब्धि- भारतीयशास्त्रों में वरदान द्वारा कृतकृत होनेके उदाहरण आते हैं- इन कथाओं से विदित होता है कि शास्त्रगत आप्तवचनों से स्वसत्ता का ज्ञान (self-realization) होना संभव है। साधकको शक्तिसम्पन्न प्रतिभाशाली पुरुष ने प्रश्न किया कि स्वयं से प्रश्न करो 'कोऽहम्'। उत्तर में गुरु और शिष्य मौन हो गए। अर्थात् कुछ जानना शेष नहीं रहा। इसप्रकार के गुरु-शिष्य परंपरा के अनेक उदाहरण हैं।

5- सहवस्थिति सर्जक है- तैंतीस कोटिके देवताओं का शरीर में निवास है अर्थात् यह सामँजस्य की भावना का उदाहरण है कि वैश्विकस्थापन भी एक संतुलन और सौहार्य पर आधारित है आज दाम्पत्यजीवन में, परिवारिकजीवन में, सामाजिकजीवन में आवश्यकता है तैंतीसकोटि देवताओं के समान व्यवस्था की, गठन की। वेदों के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि देवता सृष्टि उपक्रममे सहवस्थित रहते हैं।

6- पुनरुक्ति से प्रज्ञानिर्माण- भारतीय दर्शनशास्त्रों में पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाता। इसके पीछे तथ्य यह है कि पुनःपुनः प्राप्तज्ञान से नवजात शिशु में बौद्धिक विकास होता है। बार-बार नारायणशब्द से पुत्रको सम्बोधित करने से आवृत्तिजन्य संस्कारों के प्रभावसे अन्तकाल में पुत्रको आवाहन करनेके लिए पुकारे गए 'नारायण' से भगवान नारायण का आगमन कोई आश्चर्य नहीं। तीनबार शान्तिमंत्रों का उच्चारण दैहिक-दैविक-भौतिक तापों से शांतिप्रायक हैं, महावाक्यों (तत्त्वमसि, अहंब्रह्मोस्मि, अयमात्मा ब्रह्म तथा प्रज्ञानं ब्रह्म) के उच्चारण से स्वरूपज्ञान आदि द्वारा परिज्ञात पुनरुक्ति को दोष नहीं मानना चाहिए।

7- सदेह और विदेह दो की एकमें सम्भावना- सभी देवता वपुवान भी हैं और वपुरहित भी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि समस्तप्राणधारी स्थूलत: देहवस्थित हैं और सूक्ष्मत: अन्त:करणावस्थित हैं। स्थूल देश-काल-परिधि में कृतक है जबकि सूक्ष्म व्यापक-व्याप्त कारण है। भगवान शिवके प्रभावसे कामदेव का देह भस्म हुआ और वरदान से सूक्ष्मदेहकी प्राप्ति हुई। अत: प्राणीमात्र भी बहिरङ् और अन्तरङ् हैं, मानसकी पँक्ति है-

दोहा-अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।

बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु।।(रामचरितमानस/बाल/८७)

8- अनंत पर आधारित-संसार- अनंत शेषनागका पर्याय है। कथा है कि इनके फणों पर सारा ब्रह्मांड़ टिका है। भगवान विष्णु भी अनन्तशायी हैं। अर्थात् अंतका जहाँ अन्त हो वह 'अनन्त'। ब्रह्मांड़धारण करने की प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में तथा शेषनाग के 'अनन्त' कहे जानेके पीछे व्यापकत्व की भावना का उद्बोधन है।

9- शठम् शठेन समाचरेत्- बंदर और मगर की मित्रता की पृष्ठभूमि में यही सिद्धांत दर्शाया गया है। मीठेफलों के निरन्तर भक्षणसे कलेजा कितना मीठा होगा, इस सोचके कारण मगरी को बंदरके भक्षण की इच्छा हुई और मगरने छलपूर्वक उसका अपहरण किया और बंदर ने भी बुद्धिकौशलसे छलपूर्वक स्वयंको बचाया।

10- प्रेयस और श्रेयसवाचक नामकरण- राजा उत्तानपाद की पत्नियां सुरुचि और सुनीति प्रेय और श्रेय की व्याहृति हैं। श्रुतियों ने मानव कल्यार्थ दो पथों का प्रवचन किया- श्रेयस और प्रेयस। प्रेयस पतन का द्योतक है और श्रेयस कल्याण का। इनके चरित्रचित्रण की पृष्ठभूमि नामकरण में निहित है। अत: नाममें श्रेयस अर्थात् कल्याणकारिता का वास रहता है।

11- ब्रह्मसे उत्पत्ति, पालन और प्रलय- रामचरितमानस में सीताका चित्रण भूमिसुता के रूपमें हुआ है। भूमिसुता होने के कारण सीता सदैव भूमि का स्मरण करती हैं और अन्तमें भूमिमें ही लीन हो जाती है। धर्य पृथ्वीका गुण है सीता भी 'धीरजरूपी' प्रतिमा है- 'धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि।।'(अयो.२८६) अर्थात् पृथ्वी का गुण धर्य है वह सीताके चरित्रमें भी मिलता है तथा विपदामें भी तुलसी लिखते हैं कि- 'चारु चरन नख लेखति

धरनी।'(अयो.५८)। स्पष्ट होता है कि 'स्वभावो दुरतिक्रम' स्वभावका अतिक्रमण नहीं होता। जैसे सीता के विषयमें भी ऐसी कथा है कि अन्ततः सीता पृथ्वीकी गोद में ही समा गई, इसीभांति श्रुतियाँ भी ब्रह्मसे सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और प्रलय ब्रह्ममें ही स्थापित करती हैं। यह सिद्धांत सर्वत्र प्रति भी है।

12- भारतीय प्रतीकात्मक शैली किसी विशिष्ट लक्ष्य को लिए है- नदियों का पार्थिवरूप नदीके रूपमें है और उनका सूक्ष्मरूप देवीयों का प्रतीक भी माना जाता है। उदाहरणार्थ गंगाको 'भूप भागीरथी सुरसरी आई' इसमें सुरसरी नाम से अभिहित किया। गंगा भक्तिका प्रतीक मानी गई है, सरस्वती ज्ञानका तथा यमुना कर्मका प्रतीक। इस प्रतीकात्मक शैलीका निर्वाह लेखक निरंतर करता है। 'जस मरु धरनि देवधुनि धारा।' अर्थात् शुष्कहृदय में भक्ति का उद्भव। तथा ज्ञानसमन्वितकर्म और ज्ञानसमन्वितभक्ति तीरथराज प्रयागके अर्थो को लिए है।

'जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा।।

त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरुप सिंधु समुहानी।।' (बा.४०)

13- साढ़सती शब्दका प्रयोग कष्टकारक कालका वाचक है- इसे शनीकी दशाके रूपमें रखकर इसका विवरण प्राप्त होता है। मानसमें कुबड़ीको साढ़सती शब्दसे कहने में इतना ही भाव है कि वह कष्टकारक भविष्यका सूचन करती है।

14- बाह्यदृष्टि से अनुचित एवं ज्ञानात्मक दृष्टि से औचित्य- बालीवध के प्रसंगमें वृक्षकी आड़से मारना अनुचित प्रतीत होता है परन्तु शोधित दृष्टि से वह उचित है। गीता में 'पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः।।'(गी.१/३६) आततायियों के वध को औचित्यकथन करता है। अर्जुनके मोहात्मक अज्ञानका निवारण भी कौरवोंको आततायी मानते हुए किया गया है। महाभारतमें आततायि वध येनकेन प्रकारेण होना ही धर्मका सही मर्म कहा गया है। मानसमें बाली यद्यपि रामका शत्रु नहीं है परन्तु भाईकी पत्नि, बहन, पुत्रवधु एवं कन्या इनको कुदृष्टि से देखनेवाला वधयोग्य है, आततायी है-

'अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।'(अर.९)

15- ज्ञान विषका पान करता है, भक्ति विषको अमृत बनाती है और कर्म विषका प्रक्षालन करता है- भगवान शंकर विषको कंठमें धारण करते हैं (कटुता-वैर को ना उगलते हैं ना हृदयमें धारण करते हैं)। ज्ञान-भक्ति और कर्म के स्वरूपों का वेदों में विशद् विवरण है। भक्तिके माध्यम से कर्मों का प्रक्षालन, योगके द्वारा कर्मों का विशुद्धिकरण तथा ज्ञानाग्नि के द्वारा कर्मों को क्षार कर देना भारतीयविज्ञान की तात्त्विक देन है कि जिसे नदियों में स्वरूपित किय गया है-

'राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा।।

बिधि निषेधमय कलि मल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी।।'(बा.२)

16- तितिक्षा, सहिष्णुता आत्मज्ञानके साधन हैं और साध्य भी- इसे अवान्तर कथाओं से संदर्भित किया जाता रहा है; चाहे पुराण हों या इतिहास। इसप्रकार की अनेक गाथाएँ हैं-

क) शिवि महाराज- शरणागतवत्सलता के प्रतीक शिविमहाराज ने बाजसे भयभीत कपोत की रक्षा की। बाजरूपी इन्द्र और अग्निरूपी कपोत ने यज्ञमें विघ्न ड़ालने के निमित्त आए। इस रूपक की रचना बताती है कि कपोत क्षुधित बाजका आहार है और उसकी रक्षा के बदले राजाको अपने शरीर से कपोतके शरीर समान मांस देना होगा। शिविराजा ने काटकाट कर पूरा शरीर पलड़े पर चढ़ा दिया तब भगवान विष्णु प्रकट हुए और शिविमहाराज का उद्धार किया। शिविमहाराज का बचना उनकी प्रजा और प्राणियों के प्रति उदार हृदयका परिचायक है।

(ख) दधिचि ऋषि के देवहित अस्थिदान और सहनशीलता से सभी परिचित हैं।

(ग) हरिश्चन्द्र के सत्यपालन, वचनपालन के लिए सहर्ष उठाए कष्टों से भी सभी अवगत हैं

(घ) रंतिदेव की उपकथा भी आतिथ्य हेतु सहिष्णुता की पराकाष्ठा है। 'अति दानेन दारिद्र्यम्' से अवगत दानशीलता को समर्पित राजा रंतिदेव के पास जब दान के उपरान्त जलमात्र शेष बचा था तभी एक आगन्तुक

चाण्ड़ाल की याचना से द्रवित होकर स्वयं भूख-प्यास से मरणासन्न होने पर भी प्राप्त जल उसे दे दिया। परिणामत: भगवान का साक्षात् दर्शन हुआ, जीवन कृतार्थ हुआ। सभी धर्मों में विशेषत: ईसाई और इस्लाम में दान का महत्व स्वीकार किया गया है। नीतिशास्त्र के अनुसार अधिकार और कर्तव्यों का उचित पालन दान है- सेंट आगस्टाइन, कौजिन ने इस शब्द का प्रयोग किया है। रामचरितमानस में इन शब्दों में उद्धरित किया है-

'सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।।

रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना।।'(अयो.९५)

17- शक्तिबल के समक्ष ज्ञानबल की श्रेष्ठता- शक्तिबल के समक्ष ज्ञानबल की श्रेष्ठता का प्रतिपादन विश्वामित्र-वसिष्ठ कथानक से ज्ञात होता है। ब्रह्मबलकी श्रेष्ठत्व के समक्ष क्षत्रियबलकी न्यूनता है- 'धिक् क्षत्रियबलम्'।

17- सकारात्मक दृष्टिकी महत्ता- रामका चरित्र सकारात्मक दृष्टि के महत्त्वका वैयक्तिक, पारिवारिक, व्यवहारिक तथा पारमार्थिक स्तरों को सुसंयत स्थापन देता है। अनेक उदाहरण हैं-

(क)'मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर। तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर।।'(अयो.४१)

(ख)भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजु।'(अयो.४२)

(ग) निरपेक्षप्रेम की महत्ता- श्रीराम के अयोध्या आगमन के बरद घर, परिवार, ससुराल तथा समाज में स्थानस्थान पर पहुनाई हुई। बहुत से पकवानों को रात चखचख कर कुछ खोज रहे दिखाई दिए। सखियों ने पुछा कि प्रभो! आप क्या ढूँढ़ रहे हैं। कई बार पूछने बोले 'सबरी के फलन की रसमाधुरी न पाई।

(घ) अयोध्या वापसी पर गुरु वसिष्ठ का परिचय वानरों को देते हैं- 'इनकी कृपा दनुज रन मारे' और ग1रुदेव को बानरों का परिचय देते हैं कि हे गुरु! 'ऐ सब सखा सुनहुँ मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे'। चारित्रिक पराकाष्ठा का दिग्दर्शन श्रीराम में मानसगत मिलता है। कथा का मूल उद्येश्य है कथा के माध्यम से सार्वभौम चरित्रोत्थान।

18- तपकी महिमा- श्रुतिवचन है कि- 'तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत'(प्रश्नोपनिषद्/१/१४) तप से महिमान्वित केसरी और अंजना ने तप करके भगवान शंकरसे वरदान पाया और उसके प्रभाव से शिवही उनके पुत्ररूप में 'हनुमान' हुए। इसीलिए उन्हें 'शंकर सुअन केसरी नन्दन' कहा जाता है। जप भी सहिष्णुता का पर्याय है।

9- सेवा से स्वर्ग- श्रुत्यानुसार 'शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।'(क. उ. १/१/१२) अंधे माता-पिता की सेवाके प्रभाव से श्रवण को ऐसा ही स्वर्गलोक प्राप्त हुआ। गीता में 'सेवया' (४/३४) शब्द के अद्भुत प्रभाव का वर्णन है। हमारे ड़ाक घरों का 'अहर्निष सेवामहे' पहचानचिन्ह है।

20- त्याग और परमात्मा का अंगांगी भाव है- 'त्यागाच्छांतिरनन्तरम्', 'त्यागेनैनेकमाप्नुयात्' तथा 'तेन त्यक्तेन भुंजिथा' आदि श्रुतियों को कथा और उपकथाओं में दृष्टांत उपस्थित किए हैं। महाराज ययाति की कथा इसका प्रमाण है। भर्तृहरि के वचन भी इसी संदर्भ को उजागर करते हैं।

21- सेवाबल-'तनय जजातिहि जोबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ।।'(अयो.१७४) ययाति महाराज की भोगों से उपरति नहीं हुई तब मिले हुए वरदान के प्रभाव से सबसे छोटे पुत्रसे उसका यौवन मांगा और वासनाओं का भोगा। पुनः छोटेपुत्र 'पुरु' को उसका यौवन लौटा दिया। पिता की आज्ञा के बलपर जिस यौवन से पिता ने संसार भोगा, उसी यौवन का उपयोग करने में 'आज्ञा पालन' के परिणामस्वरूप दोषदूषित नहीं माना गया।

22- अक्रोध और सहिष्णुता के मूर्तिमान विष्णु- भृगुऋषि शिवके पुत्र और धनुर्विद्या के प्रवर्तक माने गए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव में श्रेष्ठता का निर्णय करने के लिए भृगुऋषि ने सभी का अपमान करने की ठानी। ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मा और शिव तो क्रोधित हुए परन्तु जब भृगुऋषि ने जाकर विष्णु की छाती में लात मारी। पर विष्णुभगवान ने पूछा कि आपके चरण में कहीं चोट तो नहीं आई।

'सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।

जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस।।'(बाल.६४)

23- दया धर्म है निर्दयता अधर्म- महाराजध्रुव के वंश में हुआ महाराजबेनु निर्दयताकी जीती-जीगती मूर्ति था जोकि अपनी निर्दयता के कारण, अपने को सबसे बड़ा मानने के कारण, अपने अहंकार के कारण ब्राह्मणों के कोपका भाजन हुआ और नष्ट कर दिया गया।

दोहा- 'ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान।

लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान।।'(अयो.२२८)

24- अभिमान का परिणाम पतन है- 'कोऽहम्' का परिज्ञान उत्थान है और इसके अभाव में क्षुद्र-अहम् पतन है। 'नहुष' की कथा क्षुद्र-अहम् का परिणाम है। ब्राह्मण-वृत्रासुर के बधके कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी और उससे भयान्वित इन्द्र मानसरोवर में जा छिपे। देवऋषि बृहस्पति ने इन्द्रासन को खाली देख सर्वप्रकारसे सुयोग्य देखकर नहुष को इन्द्रासन पर बैठा दिया। परन्तु नहुष को पद का अभिमान इतना बढ़ा कि इन्द्राणी को भी अपनी बनाना चाहा। सुरगुरु के परामर्ष से उसने नहुष को संदेश भेजा कि वह जिस पालकी पर बैठकर आए उसे सप्तऋषियों ने कंधों पर उठारखा हो। मदान्ध नहुष का सप्तऋषियों के श्राप से पतन हुआ, यह गाथा सर्वविदित है। मानसकार ने भी इसे उदाहृत किया है-

'सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।।'(अयो.२२९)

25- राजमद के कारण सहस्रबाहु मारा गया- उसने सैन्यबल से जमदग्निमुनि के आश्रमसे कामधेनु का अपहरण करवा। फलस्वरूप जमदग्निपुत्र परशुराम ने उसे युद्ध में मार गिराया।

26- दैवीविधान से विपरीत की आकांक्षा या आचरण अवैध है- उपमान के रूपमें इसको 'त्रिशंकु' की कथा के व्याजसे कहा गया है। महर्षि विश्वामित्र द्वारा सशरीर त्रिशंकु को स्वर्ग भेजने से यह तथ्य अवगत होता है।

27- मिथ्या शंका तेज को मलिन बनाती है- अरुन्धति वस्तुतः कर्दम ऋषि की कन्या थी। उनके पति का नाम महामुनि वसिष्ठ था। पति के सच्चरित होने पर भी उनपर शंका करने के कारण अरुंधती का तेज कभी उजला एवं कभी मंद दिखाई देने लगा। आकाशमण्डलस्थित तारागण के मध्य सप्तऋषि तारों में वसिष्ठ तारे के पास ही अरुंधती

तारा स्थित है। परन्तु पतिवसिष्ठ पर अनैतिक शंका रहने के कारण यह अरुंधतीतारा भी आकाश के मलिनादि दोष के कारण कभी दिखाई देता है कभी नहीं। रामचरितमानस में केवल एक बार अरुंधती का नाम आया है- 'अरुंधाती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ।।'(बाल.१८७)

28- क्रिया से नाम पर प्रभाव- शिवभगवान की पतिरूपमें प्राप्ति के लिए सती ने पत्तेमात्र खाकर घोर तपस्या की। बाद में सूखे पत्तों का भी परित्याग कर दिया, उसकी के कारण पार्वती का एक नात 'अपर्णा' भर पड़ गया- 'पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भयउ अपरना।।'(बा.७४)

30- आचरण के कारण पंचकन्याओं की पूजा- पंचकन्या वे पाँच कन्याएँ हैं, जिनका भारत के हिन्दू सम्प्रदाय और धर्मग्रंथों में विशिष्ट स्थान है। पुराणों के अनुसार ये पाँच कन्याएँ विवाहित होते हुए भी पूजा के योग्य मानी गई हैं।[1] इनके नाम हैं- 'अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती तथा मंदोदरी। ऐसा वचन है कि 'पंचकन्याः स्मरेतन्नित्यं महापातकनाशकम्॥'[1] (भारतीय संस्कृति कोश, भाग-२, प्रकाशकः यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली-११०००२ संपादनः प्रोफ़ेसर देवेन्द्र मिश्र, पृष्ठ संख्याः ४५८)

31- अघवृत्ति अघासुर की भांति बढ़ती जाती है और इसका विनाश हृदयमें भगवान का निवास होने पर होता है- अघासुर पूतना और बकासुर का छोटा भाई था तथा एक राक्षस था। जो आट मील लम्बे सर्पके रूपमें आया और श्रीकृष्ण के हाथसे मारा गया। अघ का दूसरा भाव है पाप। पापप्रवृत्ति भी अघासुर के समान लम्बाती जाती है, जब हृदयामें कृष्ण का प्रवेश होता है तभी अघ नष्ट होते हैं।

32- गुरुभक्ति का अनुपम उदाहरण आरुणि- आरुणि धौम्यऋषि का छात्र था। गुरुजन छात्रों की निष्ठा की परिक्षा करते रहते थे। आरुणि की परिक्षा का अवसर आया कि- हे आरुणी! बरसात की अधिकता है जाओ खेत की रक्षा करो। बरसात का पानी खेत की तरफ बढ़ता चला आ रहा था। उसकी सुरक्षा का कोई और उपाय न सूझकर खेतकी ओर आते पानीको रोकने के लिए आरुणी ने प्रयत्न किया पर प्रयास को निष्फल होते देख आरुणी बाड़ के टूटे हुए भाग पर स्वयं से लेट गया और पानी रुक गया। परन्तु बहुत समय तक लेटे रहने के कारण उसे मूर्छा भी

आ गई। प्रात:काल धौम्य को चिंता हुई कि आरुणी को खोजें, देखा तो आरुणि को पानी को रोके मेड़ के पास लेटा पाया। गुरुजी भावविभोर थे। फलत: आरुणि के गुरुभक्ति के कारण अध्यात्मविचारों में प्रगल्भता आ गई।

33- श्रेष्ठ की प्राप्ति के लिए अल्प का त्याग- याज्ञवल्क्य और मैत्रियी की कथा इसका उदाहरण है। औपनिषदिक काल की एक विदुषी का नाम था मैत्रेयी। वह ब्रह्मवादिनी के नाम से विख्यात हुई। महर्षि याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी थीं। ज्येष्ठा पत्नी कात्यायनी मैत्रेयी के गुणों के कारण इससे बड़ी ईर्ष्या रखती थीं। पति का स्नेह भी इसे अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त था। महर्षि याज्ञवल्क्य जब सन्यस्त होने लगे तब धनके बंटवारे में इन्होंने धनसे अधिक मूल्यवान वह आत्मज्ञान चुना जिसके लिए महर्षि सन्यास धारण कर रहे थे। पति के साथ संन्यास लेने की चर्चा बृहदाररण्यक उपनिषद में आई है।

क्रोध का शमन अनुग्रह से करें-इंद्र के अपराध के कारण ऋषि गौतम ने अहिल्या को श्राप दिया और पुन: अनुग्रहके रूपमें भगवान श्रीराम के चरणस्पर्श द्वारा वे पुन: उनका उद्धार हुआ।

34- पतन का कारण अभिमान- एक बार देवऋषि नारद की अनवरत समाधि को भंग करने के लिए आए कामदेव के बहुत प्रयत्न करने के उपरान्त भी नारद अविचल रहे। इस बात का नारद को अभिमान हो गया और उस अभिमान के फलस्वरूप नारद को शीलनिधि राजा की कन्या के स्वयंबर में उसे पाने की इच्छा हुई, वस्तुत: अभिमान पतन का कारण है। रामचरितमानस में भगवान विष्णु ने आकर ऋषि का मोहभंग किया।

35- गोकर्ण के जन्मकी कथा से बीज और फल की एकरूपता का ज्ञान- गोकर्ण के जन्मकी कथा श्रीमद्भागवत् में आती है उससे ज्ञात होता है कि पुत्रहीन आत्मदेव नामके ब्रह्मणको महात्मा के प्रसाद से गायके गर्भ से भगवद्भक्त गोकरण का जन्म हुआ और पत्नी धुन्धुली जो दुष्टस्वभावा थी उस धुन्धुली की बहन को एक पुत्र हुआ उसका नाम धुन्धुकारी रखा। मां के पतित स्वभाव के कारण धुन्धुकारी दुश्चरित्र, चोर और वेश्यागामी निकला। मातापिता के स्वभाव का प्रभाव संतति पर आता है। कथा का विस्तार अपेक्षित नहीं अपितु प्रयोजन अपेक्षित है।

मृग के छौने में मोहासक्ति के कारण महाराज भरतको दो जन्म और लेने पड़े- जड़भरत की कथा मोहग्रस्त हो जाने के परिणाम को दिखाती है। मोहके कारण ज्ञान प्रतिहत हुआ और हिरण का एक जन्म लेने के उपरान्त वे पुनः मनुष्ययोनी में आए और जीवनभर जड़वत् रहे जिससे पुनः मोहादि से ग्रस्त ना हो जाएँ। श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध में इसका वर्णन मिलता है।

एकही शब्द पात्रानुसार अभिव्यक्ति देता है- इसका उदाहरण विख्यात 'द' शब्द से भिन्नभिन्न अर्थित हुआ। मनुष्यों ने 'द' से दान लिया क्योंकि वे संग्रहवान थे। राक्षसों ने 'दया' अर्थ लिया क्योंकि वे निदायी थे। ओर देवताओं ने 'दमन' लिया क्योंकि वे स्वर्गीयभोगों में आसक्त थे।

संकल्प और कर्म में भेद के दुष्परिणाम-कठोपनिषद् में आई नचिकेता की कहानी संकल्प और कर्म में भेद रखने के परिणाम दिखाती है।

मदालसा की कथा संतानों के लालनपालन समय में ही शिक्षाके बीजारोपण की महत्ता दिखाती है- पौराणिक चरित्र मदालसा ऋतुध्वज की पटरानी थी। उसे चार पुत्र प्राप्त हुए। मदालसा का मानना था कि नाम तो सम्बोधन हैं जबकि आत्मा का तो कोई नाम ही नहीं। उसने पहले तीन पुत्रों के नाम विक्रांत, सुबाहु तथा अरिमर्दन रखे। चौथे बालक का नाम मदालसा ने 'अलर्क' रखा। वह 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि' का उपदेश लालन में ही देती। परिणामस्वरूप बड़े होने पर उसके पहले तीन पुत्र विरक्त हो गए। राजा ने मदालसा से कहा कि उसकी वंश परंपरा ही इसप्रकार नष्ट हो जायेगी। तब राजा के आग्रह से मदालसा ने चौथे बालक को अलर्क को धर्म, राजनीति स्वार्थ-परमार्थ आदि का व्यवहार शिक्षण दिया।

आध्यात्मिकबल और सांसारिकबल का अन्तर- विश्वामित्र की कथा राजऋषि और ब्रह्मऋषि का अन्तर दिखाती है। नंदनी गौ के हरण प्रसंग में वसिष्ठ के ब्रह्मतेज के समक्ष क्षत्रियबल के हताहत होने की गाथा है। ब्राह्मणत्व स्वभाव की उच्चता का भी ज्ञापन है।

मति सो गति- श्रीमद्भागवत में आई परिक्षित की कथा से विदित होता है कि परीक्षित एक राजा होने के नाते अपने कल्याण के साथ सभी के कल्याण के प्रति सजग थे। कथासे विदित होता है कि श्रापित होने के तुरन्त बाद राजा ने पुत्र जन्मेजय को राज्याभिषिक्त किया और स्वयं मनुष्य जन्म के कल्याणार्थ बनगमन किया। ऋषिगणों से मिलन हुआ और उनकी कर्तव्यपरायणता के कारण महामुनि शुकदेव का आगमन हुआ और भागवत श्रवण कर अन्तमें भगवद्धाम को पधारे। ऋषि से उनका प्रश्न उसी सात्विकी निष्ठाका परिणात था कि "हे महाभाग! वह कौन सी धारणा है जो अज्ञानरूपी मैल को शीघ्र दूर कर देती है और उस परमात्मा की धारणा को कैसे जीया जाय है?"और समाधानरूपमें सर्वकल्याणकारी श्रीमद्भागवद् का अवतरण हुआ।

पौराणिक कथाएँ अनेक हैं जिनमें किञ्चित् नाम इसप्रकार हैं जिनके साथ कोई भी सकारणता का ज्ञापन है- गणेश जी की कथा, द्रौपदी हरण, जांबवती, पूतना वध, मत्स्य अवतार की कथा, मधु कैटभ कथा, महिषासुर वध, रुक्मिणी परिणय, चाणूर और मुष्टिक, वराह अवतार की कथा, यमलार्जुन मोक्ष, शबरी के बेर, सती शिव की कथा, समुद्र मंथन, सहस्त्रबाहु और परशुराम, सत्यवान-सावित्री, धृतराष्ट्र का वनगमन, भरथरीहरि, त्रिदेवपरीक्षा, ध्रुव, नृग, कबंध, नल दमयन्ती, अंगुलिमालकी कथा, कुन्ती का त्याग, हलाहल विष, कौस्तुभ मणि, श्रवण कुमार, उपचरि, कृत्तिवासा, मणिमान, उपमन्यु आदिक।

मानस में आई अंधककी गाथा अत्याचार प्रतीका है, पुण्यकर्मा अंशुमानकी, लक्ष्यके प्रति समर्पित भागीरथकी, महर्षि अगस्त और तपस्वी सुतिक्षणकी, अत्रिकी सभी सोद्येश्य हैं और किञ्चित् तथ्यात्मक भी हैं। अनंतका उदाहरण अनंतकाल का प्रतीक, अनुसुया पातिव्रत की प्रतीक, छद्मभेषसे इन्द्र द्वारा भोगी गई पाषणमयी अहिल्या जड़मतिकी प्रतीक, कद्रू इर्षा की प्रतीक, कपिल सांख्य शास्त्रके आधार, कुंभज, कश्यप, अदिति, वामन, बलि, कबंध, काकभुशुंडि, कामदेव, लवकुश, कैकेयी आदि मूलोद्येश्य के संवर्धक प्रतिमान हैं।

उदनिषदों से (जिन्हें आत्माकी व्यापकता, देहान्तरणका स्वरूप, सृष्टितत्त्व और प्रलयतत्त्व विवक्षित है)तत्त्व की सारगर्भिता की ओर ईशारा किया गया है। मानसमें प्रयोग की गई उद्धरणशैली दार्शनिक, धार्मिक, व्यवहारिक

के प्रसंगों को अग्रसर करती हैं। उदाहरणतः 'गनिका, अजामिल, गीध, व्याध, गजादि खल तारे घना' तुलसी उक्ति में कितनी ही प्रसंगस्वरूपा कथाएँ हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, शम, दम, उपरति, तितिक्षा की संवर्धक कथाएँ उपनिषदों, महाभारत तथा पुराणों और अन्य अनेक संतसाहित्यों में भरी पड़ी हैं। अतः हमे इन्हें मानवहित में सार्वत्रिक हितैषिणि पाते हैं।

''शुभम् भूयात्''

With regards

DR. Prem Sukh Mangla

C-21, SMA Industrial Estate,

Near Jahagirpuri Metro Station,

Delhi-110033

Phone No. 09871352052

E-mail- premsukh@mangla-group.com

संदर्भ ग्रन्थ

1- तुलसीकृत रामचरितमानस

2- महाभारत

3- विभिन्न पुराण